नन्दिनी का स्कूल

कमला बाजपेई

स्कूल बच्चों के जीवन में अनायास आया हुआ हस्तक्षेप है, जो अगर बहुत सोचा-परखा, सुनियोजित व संवेदनशील न हो तो उनके शुरुआती दिनों को असहज बना सकता है। बच्चों का शुरुआती जीवन सीखने और समझ बनाने के एक सहज प्रवाह की तरह होता है। उसमें आसपास अवलोकन, आपसी अनौपचारिक बातचीत, मौलिक अभिव्यक्ति और सामूहिकता के लिए पर्याप्त अवसर होने बहुत जरूरी हैं। स्कूल में नन्दिनी की असहजता के उदाहरण के बहाने, लेखिका प्राथमिक स्कूल में सीखने-सिखाने के तौर-तरीक़ों और शिक्षक की तैयारी पर रोशनी डालती हैं। सं.

नन्दिनी का स्कूल

इस लेख में स्कूल कैसे बच्चों का समाजीकरण करता है, स्कूल की प्रक्रियाएँ बच्चों के मन मस्तिष्क में किस तरह की छवियाँ बनाती हैं, उसके बारे में बातचीत है। पहले नन्दिनी की कहानी है, और फिर मेरे बचपन के स्कूल का ज़िक्र भी है, नन्दिनी के साथ हुए मेरे अनुभव ने मुझे मेरे बचपन के स्कूल के अनुभवों की याद दिला दी। नन्दिनी के स्कूल में प्रवेश लेने और स्कूल के समुदाय से जुड़ने के दौरान क्या-क्या और कैसे घटा इसका अवलोकन करते हुए मैंने स्कूल की प्रक्रियाओं, शिक्षकों के व्यवहार और उनकी बातों का बच्चों पर प्रभाव इनके सन्दर्भ में क्या-क्या समझा और सीखा, इस बारे में मैंने लिखने की कोशिश की है।

नन्दिनी के साथ जुड़ने का अनुभव

नन्दिनी आज पहली बार स्कूल आई थी। नन्दिनी, 7 वर्ष की वह बच्ची, जो मन में उल्लास और कौतूहल से भरी एक दुनिया लेकर स्कूल की पहली कक्षा के कमरे में प्रवेश करती है। वह अपनी मौसी के साथ रायपुर के कुशालपुर इलाक़े में रहती है। उसके माता-पिता बलौदा बाज़ार के भाटापारा के पास एक फ़ैक्ट्री में काम करते हैं। नन्दिनी ने पहले दिन स्कूल में आते ही अपनी चहकती आवाज़ में शिक्षकों को नमस्ते कहते हुए अपनी उपस्थिति को दर्ज करवाया। बहुत ही खुली अभिव्यक्ति और चंचल स्वभाव की नन्दिनी आज स्कूल में घूम-घूम कर सभी को अपनी उपस्थिति का एहसास करवा रही थी। इसके अतिरिक्त वह स्कूल की सभी चीज़ों को छूकर उन चीज़ों के साथ जुड़ना चाहती थी। नन्दिनी के इस जुड़ाव को शिक्षक सहज तरीक़े से नहीं ले पा रहे थे, जैसे– उसे कुर्सी पर बैठने से रोका, किताबों को छूने से रोका, चॉक से बोर्ड पर लिखने से कई बार रोका। सभी बच्चों के बैग को खोलना और उनमें से किताबों को बार-बार निकालना, अपने बैग को कभी इस स्थान पर रखकर बैठना तो कभी दूसरे स्थान पर, नन्दिनी के यह सभी कार्य शिक्षकों को असहज कर रहे थे। ऐसा शिक्षकों के चेहरों के भावों में दिख रहा था, और कई बार तेज़ आवाज़ में शिक्षकों द्वारा नन्दिनी को चुप करवाने का प्रयास भी किया गया।

आज नन्दिनी का स्कूल में पाँचवाँ दिन था। अब नन्दिनी अपनी कक्षा में बच्चों के साथ हिल मिल गई थी, उसके कुछ दोस्त भी बन गए थे। नन्दिनी जब कक्षा में पढ़ती तो कुछ शब्दों को ठीक से नहीं बोल पाती थी, जैसे– बदला को 'बलदा' बोलना, हाँ को 'हाव' बोलना और हमेशा वह 'हमर मन' बोलती थी। कभी-कभी वह अन्दाज़े से किताब को खोलती और जो चित्र होते उन्हें देखकर अपनी कहानी सुनाती। कॉपियों में यूँ ही या तो कुछ चित्र बनाती या फिर कुछ लिखती, जिसका शिक्षकों के लिए कुछ अर्थ नहीं होता। शिक्षकों के अनुसार उसे दूसरी कक्षा में होना चाहिए और उसे किताब पढ़ना चाहिए, इसीलिए शिक्षक शिक्षा का अधिकार क़ानून (RTE) को कोसने का कोई मौक़ा नहीं छोड़ते। इसके अतिरिक्त, शिक्षक नन्दिनी के माता-पिता को भी दोषी बनाने के लिए उन तमाम शब्दों का इस्तेमाल करते जो कि किसी भी इंसानियत को चुनौती देते थे।

सिलसिला आगे बढ़ता रहा और अभी सत्र के 4 से 5 महीने गुज़र गए। अब नन्दिनी की उस चंचलता, खुली अभिव्यक्ति को जैसे कहीं किसी ने कोस दिया हो, अब सुबह नन्दिनी स्कूल आती और जो शिक्षक सामने मिल गए, उनसे नमस्ते किया और अपनी कक्षा में चली गई। कक्षा में चुपचाप किताब निकालकर जो भी शिक्षक बोलते, उसे अपने आसपास के बच्चों के सहयोग से पूरा करना और शिक्षकों से कॉपी को चेक करवा लेना जैसे उसकी नियमित दिनचर्या बन गई थी।

नन्दिनी से मेरी बातचीत की शुरुआत – पहला घटनाक्रम

एक दिन जब मैं स्कूल गई उस समय अतिशेष चल रहा था और सभी बच्चे स्कूल मैदान में खेल रहे थे, लेकिन नन्दिनी झूले के पास बहुत उदास बैठी थी। मैंने पास जाकर पूछा, "क्या हुआ नन्दिनी, यहाँ अकेले क्यों बैठी हो?" नन्दिनी ने सहज ही कहा, "नहीं, कुछ नहीं मैडम, बस यूँ ही।" लेकिन उसके चेहरे के भाव यह साफ़-साफ़ बयान कर रहे थे कि कुछ तो चल रहा है नन्दिनी के मन में, जो उसे इस स्कूली माहौल में परेशान कर रहा है। लेकिन वह अपने मन की बात कह पाए, ऐसा उसका मेरे साथ रिश्ता शायद नहीं बना था। तभी मैंने सभी बच्चों को एक खेल खेलने के लिए कहा। बच्चे खेल का नाम सुनते ही ख़ुश हो गए और एक साथ इकट्ठे हो गए। नन्दिनी पास में आकर बोली, "आप भी खेलेंगी मेरे साथ मैडमजी!" मैंने कहा, "हाँ, क्यों? मैं नहीं खेल सकती क्या?" नन्दिनी ने कहा, "नहीं, क्योंकि मैडम लोग हमारे बच्चों के साथ थोड़े न खेलती हैं।" 'बोल भाई कितने, आप कहें जितने' खेल शुरू हुआ, लेकिन नन्दिनी अभी तक खेल में शामिल नहीं हुई थी और वहीं झूले के पास बैठी खेल को देख रही थी। बीच-बीच में नन्दिनी के चेहरे पर हँसी के भाव आ रहे थे। अतिशेष समाप्त होने की घण्टी लगी और सभी बच्चे अपनी-अपनी कक्षा में चले गए। नन्दिनी कक्षा में नहीं गई, वह अभी भी बैठी थी उसी स्थान पर। मैं फिर से नन्दिनी के पास गई और पूछा, "कक्षा में नहीं गईं?" नन्दिनी ने कहा, "अभी मैडम किताब पढ़ाएँगी, वह मेरे से नहीं बनता, मुझे पढ़ना नहीं आता, मैं बाद में जाऊँगी।" मैंने कहा, "अच्छा यहीं किताब लेकर आ जाओ हम मिलकर पढ़ेंगे।" नन्दिनी ख़ुशी से गई और मैडम से यह कहकर अपना बैग ही लेकर आ गई कि मुझे बाहर जो मैडम बैठी हैं उन्होंने पढ़ने के लिए बुलाया है। शिक्षिका ने कुछ नहीं कहा। नन्दिनी अपने बैठने के लिए एक टाट पट्टी भी साथ में लाई। हम दोनों वहीं बैठ गए। अभी तक मैं नन्दिनी की समस्या को इतना समझ पाई थी कि शायद शिक्षकों के साथ नन्दिनी सहज नहीं है और नन्दिनी को कक्षा में वह माहौल नहीं मिल पा रहा है जिसमें वह अपनी बात को कह सके और उसके सवालों और बातों को शिक्षकों के द्वारा स्वीकार्यता मिले। हम दोनों ने कक्षा दो की किताब से 'तितली और कली' का पाठ निकाला और तितली के बारे में हम दोनों चर्चा करने लगे। इस चर्चा में अगर मैं एक

सवाल पूछती तो नन्दिनी उसके 5 से 7 जवाब देती। जैसे– मैंने पूछा कि तितली देखी है? तुमने, कभी पकड़ी भी है क्या? वह ख़ुश होकर हँस-हँस कर तितली के बारे में चर्चा कर रही थी। तितली के बारे में चर्चा करते-करते बाग़, घर की बाड़ी, किस फूल पर तितली अधिकतर बैठती है और क्यों? यह तमाम अनुभव नन्दिनी शेयर कर रही थी। अपनी चर्चा में नन्दिनी ने यह भी बताया कि अभी वातावरण उतना साफ़ नहीं है, यानी कि गाड़ियों के धुएँ और प्रदूषण के चलते अब तितलियाँ कम दिखाई देती हैं। पढ़ने और चर्चा के इस क्रम में मैंने पाया कि किताब पढ़ना नन्दिनी को नहीं आ रहा है, लेकिन उस पाठ में जो सीखने के कौशल शामिल हैं वह सभी नन्दिनी के साथ हो रही इस चर्चा में शामिल हैं। रही बात किताब के टेक्स्ट को पढ़ने की तो उसे मौखिक से किताब का टेक्स्ट पढ़ने तक कैसे ले जाया जाए, इसपर काम करने के कुछ और तरीक़े हो सकते हैं। जैसे– चर्चा के बाद मैंने नन्दिनी के साथ किताब के उस पाठ की एक-एक लाइन को उँगली रख-रख कर पढ़ा। इसके अतिरिक्त मैंने बीच-बीच के शब्दों के बारे में पूछा और नन्दिनी ने अधिकतर शब्दों की छवि को पहचानते हुए सही जवाब दिए। हमने आपस में जो मौखिक बात की उसके बारे में एक चित्र नन्दिनी को बनाने के लिए कहा, इस चर्चा ने नन्दिनी को मेरे साथ जोड़ा। अधिकतर जब मैं स्कूल से चलने लगती, नन्दिनी ज़रूर पूछती, "अब कब आओगी मैडम?" जिस दिन मैं स्कूल जाती, नन्दिनी आकर पूरे सप्ताह में क्या-क्या हुआ, क्या अच्छा नहीं लगा, उसकी पूरी कहानी सुनाती। मैंने इसी चर्चा के दौरान यह भी समझने की कोशिश की कि आख़िर नन्दिनी को कक्षा में बैठना क्यों पसन्द नहीं है। मैंने कुछ सवाल नन्दिनी से चर्चा में शामिल किए। जैसे– क्यों आपको कक्षा में बैठना अच्छा नहीं लगता? आप इतना चुप क्यों रहती हो, जबकि पहले तो आप सभी से बहुत बात करती थीं? आपके परिवार में कौन-कौन हैं? क्या-क्या काम करके आप स्कूल आती हो? क्या आपको माँ की याद आती रहती है? इन तमाम सवालों ने मुझे इस निष्कर्ष तक पहुँचाया कि बच्चों, ख़ासकर नन्दिनी, का अपना अनुभव शिक्षक शिक्षण में शामिल नहीं कर पा रहे हैं। न पढ़ पाने का संकोच और झिझक किस तरह अपमान का हिस्सा बन जाती है जो कि नन्दिनी जैसे तमाम बच्चों को कक्षा में शामिल होने से रोकती है। बच्चों को किताब की भाषा और रटा-रटाया तरीक़ा बड़ा ही निराश लगता है, जिसमें बच्चे भी यह मान बैठते हैं कि शिक्षक जो बताएँगे उसे ही उन्हें करना है और वह ही पढ़ना है। शिक्षक भी यह मान लेते हैं कि कोर्स पूरा करना है, इसलिए कक्षा को समय और पाठ्यपुस्तक की विषयवस्तु से बाँधना ही होगा। यह बन्धन बच्चों को कक्षा में मिलकर कुछ नया करने और आपस में अपने अनुभवों से सीखने के अवसरों को कम कर देता है।

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

दूसरे घटनाक्रम का अनुभव कुछ और भी अलग रहा है, आइए देखते हैं क्या हुआ

एक और दिन की घटना का ज़िक्र करूँगी। मुझे लगता है कि जो कुछ नन्दिनी के साथ हुआ वैसा और भी बहुत सारी बच्चियों के साथ होता होगा। ऐसे में एक शिक्षक का क्या रोल हो सकता है उस तरह की घटना से बच्चों को बाहर लाने में? नन्दिनी जब स्कूल आई

थी उस समय वह सभी बच्चों के साथ खेलने, जैसे– पकड़म पकड़ाई, छूने, कसकर पकड़ने का खेल, आदि में यह भेदभाव बिलकुल नहीं देखती थी कि वह लड़की है तो सिर्फ़ लड़की को ही पकड़ना है, लेकिन धीरे-धीरे नन्दिनी ने उसकी कक्षा में जो सहपाठी लड़के थे उनके साथ खेलना छोड़ दिया था। अभी वह किसी भी लड़के से बात तक नहीं करती थी, भले वह पहली कक्षा का ही क्यों न हो। एक दिन तो जब हम गोला बनाकर एक दूसरे का हाथ पकड़कर 'चकई के चकदूम' खेल रहे थे, तब नन्दिनी ने अपनी जगह केवल इसलिए बदली कि उसके बग़ल में दूसरी कक्षा का सूरज खड़ा था। तीन-चार दिन लगातार अवलोकन करके यह बात समझ में आ गई कि कुछ तो हुआ है नन्दिनी के साथ। नन्दिनी की कक्षा शिक्षिका के साथ इस बात पर चर्चा की गई कि नन्दिनी के व्यवहार में आए इस बदलाव को कैसे समझा जाए कि क्या हुआ है? इसे कैसे पता लगाया जाए कि यह बच्ची इतनी असहज क्यों हो गई है, जिसके चलते नन्दिनी ने खेलों में शामिल होना भी बन्द कर दिया था। हम दोनों ने तय किया कि हम सीधे बात न करके समझने का प्रयास करें कि क्या-क्या बदलाव इसी विषय की तरह से जुड़े हैं जैसे– खेल में न शामिल होना, खाना खाते समय लाइन में न बैठना, अपनी बात को साझा न करना, और क्या-क्या होता है पूरे दिन में। हमने 3 से 4 दिन अवलोकन किया और हमारा विश्वास पक्का होने लगा कि किसी ने ज़रूर कुछ कहा है नन्दिनी से।

एक दिन जब नन्दिनी खाना खा रही थी तब मैं भी अपना टिफ़िन लेकर उसके पास बैठ गई। "क्या लाई हो, हमें भी दोगी?" मैंने पूछा। नन्दिनी ने अपना टिफ़िन बढ़ाया तो मैंने उसमें से चावल, रोटी और थोड़ी टमाटर की चटनी ले ली। "स्कूल का खाना नहीं लिया तुमने?" मैंने पूछा। नन्दिनी ने कहा, "नहीं, मैं घर से लाई थी।" "अच्छा, घर में खाना किसने बनाया था आज?" मैंने कहा। नन्दिनी हँसने लगी और कहा, "माँ ही रोज़ बनाती हैं।" मैंने कहा, "क्यों, पापा नहीं बनाते?" बहुत ज़ोर से हँसी नन्दिनी और कहा, "नहीं, लड़के लोग नहीं बनाते।" मैंने पूछा, "क्यों?" नन्दिनी ने कहा, "मम्मी लोग बनाती हैं, दीदी लोग बनाती हैं।" मैंने कहा, "नहीं, मेरे घर में तो बाबू बनाता है।" नन्दिनी ने कहा, "हाँ, लेकिन शादी होने के बाद नहीं बनाएगा।" मैंने पूछा, "क्यों?" उसने कहा, "क्योंकि उसकी पत्नी आ जाएगी वह बनाएगी।" मैंने कहा, "हम लोग तो ख़ूब मस्ती करते हैं और साथ में खेलते हैं।" नन्दिनी ने कहा, "हाँ, शादी जो हो गई है आपकी। शादी के बाद साथ-साथ खेलने में कोई दिक़्क़त नहीं है।" "अच्छा, ऐसा किसने कहा?" मैंने पूछा।

नन्दिनी ने कहा, "बड़े गुरुजी कह रहे थे कि अब बड़ी हो गई हो लड़कों से दूर रहा करो।" मैंने कहा, "अच्छा, तो यह बात है इसीलिए आप नहीं खेलती हो और लाइन में बैठकर खाना भी नहीं खाती हो। लेकिन आपकी कक्षा की बाक़ी लड़कियाँ तो खेलती भी हैं और लाइन में बैठकर खाना भी खाती हैं, उनसे भी तो गुरुजी ने कहा होगा।" नन्दिनी ने कहा, "हाँ, कहा था मेरे सामने ही, लेकिन मैंने गुरुजी की बात मान ली और वह लोग नहीं माने हैं। गुरुजी की बात तो माननी चाहिए नहीं तो पाप लगता है।" मैंने पूछा, "अच्छा ऐसा किसने कहा?" नन्दिनी ने उत्तर दिया, "अरे गुरुजी ने कहानी सुनाई थी 5 सितम्बर को कि जो बच्चे गुरुजी की बात नहीं मानते उन्हें पाप लगता है।" हमारा खाना ख़त्म हुआ और उसी के साथ बात भी, लेकिन यह समझ आ गया कि शुरुआत कहाँ से हुई है। अब इसे ख़त्म कैसे और कहाँ किया जाए, इसकी चर्चा शिक्षिका के साथ करनी थी। हमने यह अनुभव कक्षा शिक्षिका के साथ साझा किया। उन्होंने भी स्वीकारा कि हाँ सही है यही हुआ होगा शायद, क्योंकि हमारे हेड टीचर इस तरह की बातें बोलते हैं। उनसे बात करनी चाहिए हम लोगों को, लेकिन उनसे भी सीधे बात नहीं करनी चाहिए बल्कि कुछ ऐसा करें जिससे वह समझ जाएँ।

अगले दिन से मैंने और शिक्षिका ने मिलकर काम करना शुरू किया। अभी खेल में हमारी एक तरफ़ हाथ पकड़े नन्दिनी होती और दूसरी तरफ़ सूरज, बीच में पानी पीने के बहाने मैं नन्दिनी को सूरज का हाथ पकड़ाकर चली जाती और नन्दिनी खेलती रहती। इसी तरह मैं खाना खाने बैठती और हमारी एक तरफ़ नन्दिनी और दूसरी तरफ़ कोई एक लड़का। हम बारी-बारी से दोनों से बात करते, इस बातचीत में नन्दिनी भी बीच-बीच में बोलती रहती। धीरे-धीरे वह खेलने में सहज होने लगी थी। जिस दिन मैं स्कूल नहीं जाती उस दिन बहुत सचेत तरीक़े से शिक्षिका इसी काम को करतीं। लेकिन बड़े गुरुजी ने जो कहा था उसे चर्चा में कैसे लाया जाए। इसके लिए एक दिन हमने कक्षा में कहानी पर काम करना तय किया और उसमें बड़े गुरुजी को भी शामिल किया, बिना इस चर्चा के उद्देश्य को बताए हुए। उद्देश्य यह था कि किसी तरह से वह बात चर्चा में आए और उसके अतिरिक्त उसके दूसरे हिस्सों पर भी गुरुजी कुछ बोलें। हमने कहानी चुनी 'आज्ञाकारी बच्चा'। एक बच्चे को शिक्षक बनाया और दूसरे एक बच्चे को छात्र का रोल दिया गया। इस कहानी को नाटक के द्वारा प्रस्तुत करने की तैयारी बच्चों के साथ की गई। दोनों बच्चों के साथ, शिक्षक और बच्चों के बीच डायलॉग को इस तरह से बनाया गया कि किसी तरह से 'पाप पड़ेगा' यह बात आ जाए और शिक्षक उसे नकारे कि नहीं, ऐसा नहीं होता है।

नाटक की प्रस्तुति की सहमति और हेड टीचर की उपस्थिति को सुनिश्चित किया गया। प्रस्तुति के समय हेड टीचर, नन्दिनी की कक्षा की शिक्षिका और मैं क्लास में उपस्थित थे। 17 बच्चे नन्दिनी की कक्षा में थे जिसमें से उस दिन 14 बच्चे उपस्थित थे।

दोनों बच्चों ने इस गीत से प्रस्तुति शुरू की कि 'हम भारत के बच्चे, गुरुजी माँग रहे हैं आपसे, ऐसी शिक्षा जिसमें प्यार हो दुलार, छोटे-छोटे गीत हों थोड़ा-सा संगीत हो, हँसी हो मज़ा हो, खेल हो खिलौने'।

शिक्षक के रोल में बच्चे ने अपने डायलॉग की शुरुआत की– "अरे राजू, ये कुर्सी इधर लाओ।"

बच्चे (स्टूडेंट) के रोल में बच्चे का डायलॉग– "जी गुरुजी, अभी आया।"

शिक्षक– "अरे राजू, क्या कर रहे हो? जल्दी आओ।"

बच्चा– "जी गुरुजी।"

शिक्षक– "क्या हुआ, कहाँ मर गया रे?

कुर्सी बनाने लगे हो क्या?''

बच्चा– ''नहीं गुरुजी, पहले से बनी रखी है कुर्सी, बस लाना है।''

शिक्षक– ''अरे आ गया, इतना देर कहाँ लगाया?''

बच्चा– ''गुरुजी बस कुछ नहीं, यूँ ही पेड़ के पास खड़ा था।''

शिक्षक– ''मैंने कहा था कि बड़ों की बात को पहले मानो। तुम खेलने लगे थे। बड़ों का अपमान करना, कहना न मानना, इससे सरस्वती माँ नाराज़ हो जाती हैं, पाप लगता है। पहले भी कहा है कई बार, तुम्हारी समझ में नहीं आता!''

बच्चा– ''यह पाप क्या होता है गुरुजी? आपने देखा है इसे! जैसे हम पानी को देख सकते हैं, छू सकते हैं, पी सकते हैं, आपने कभी पाप को देखा है, छुआ है!

शिक्षक– ''नहीं, पाप देखने की चीज़ नहीं है वह तो बस लग जाती है।''

बच्चा– ''अच्छा, जैसे हमें मेहँदी लग जाती है, भूख लग जाती है, ऐसे ही न!''

शिक्षक– ''अरे नहीं, यह ऐसी ही चीज़ है जो बस लग जाती है।''

बच्चा– ''अरे गुरुजी, ऐसे कैसे लग जाती है? कुछ तो होगा, नहीं तो बिना दिखने वाली चीज़ कैसे लग जाती है किसी को।''

शिक्षक– ''मैं कल और सोचकर बताऊँगा।''

शिक्षक के द्वारा यह बात कहते ही सभी बच्चे तालियाँ बजाने लगे। हेड टीचर खड़े हो गए और दोनों बच्चों को गले से लगा लिया और कहा, ''मेरे प्यारे बच्चों! मैं बताता हूँ आपको कि पाप क्या होता है। सच में मुझे भी इस बात का एहसास हो गया है कि पाप जैसी कोई बात होती ही नहीं है। मैं भी ऐसे ही आप सभी को कह-कह कर डराता था। आज से इस पाप जैसे शब्द को मैं अपनी डिक्शनरी से निकलता हूँ।'' बच्चे ही शिक्षक से नहीं सीखते, शिक्षक भी बच्चों से सीखते हैं। जो 14 बच्चे इस नाटक को देख रहे थे उनमें सबसे ज़्यादा ख़ुशी नन्दिनी के चेहरे पर थी। नन्दिनी ने तो जैसे मानो कोई बड़ा इनाम हासिल किया हो। गुरुजी के द्वारा इस बात को कहने के बाद नन्दिनी दौड़ती हुई आई और हेड टीचर से हाथ मिलाने लगी। नन्दिनी को ऐसा करते हुए देखकर सभी बच्चे हेड टीचर से हाथ मिलाने लगे। हेड टीचर के चेहरे पर भी एक अजीब-सी मुस्कुराहट और सन्तोष की लकीर साफ़ दिखाई दे रही थी।

नन्दिनी के साथ लगातार कक्षा के बाहर और कक्षा में चलाई गई इस औपचारिक एवं अनौपचारिक प्रक्रिया ने उसके चेहरे की ख़ुशी और अभिव्यक्ति को वापस लाने में काफ़ी सहयोग किया। इस प्रक्रिया में नन्दिनी की कक्षा शिक्षिका भी शामिल हुईं। उन्होंने इस बात को महसूस किया कि कक्षा में उनका अधिक हस्तक्षेप उनके और बच्चों के बीच दूरी पैदा करता है। उन्होंने, नन्दिनी के साथ जिस तरह औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षण प्रक्रिया चलाई जा रही है, उसे अपनी कक्षा में कैसे लेकर जाएँ इसपर चिन्तन करते हुए अपने शिक्षक समूह में चर्चा की और मेरे साथ भी चर्चा करते हुए कुछ प्रक्रियाओं को कक्षा में लागू किया। जैसे– उन्होंने किसी भी पाठ को पढ़ाने के पहले एक दिन बच्चों के अनुभवों को शामिल करने के लिए उसी विषय से जुड़े कुछ सवाल देकर आपस में चर्चा करके बताने के लिए अवसर पैदा किए। उन्होंने कक्षा में बातचीत के अवसर अधिक पैदा किए जिसमें 'आज की बात' प्रमुख गतिविधि रही। कक्षा में समूह बनाए और आपस में एक दूसरे के साथ बात करके सीखने की प्रक्रिया को अपनाया। उनकी कक्षा में अब बच्चे समूह में ही बैठते हैं। कौन-सा बच्चा किस तरह से कक्षा में शामिल हो पा रहा है और कौन-सा नहीं, उस बच्चे के

साथ अलग से अनौपचारिक चर्चा करना शुरू किया। मैडम के द्वारा जो प्रयास किए गए उनसे नन्दिनी की तरह ही कक्षा के दूसरे 6 से 7 बच्चे भी अब शिक्षण में शामिल होने लगे हैं। नन्दिनी अभी अपनी किताब को रुक-रुक कर पढ़ पाने तक पहुँची है। नन्दिनी और कक्षा के ऐसे ही कुछ और बच्चों के साथ प्रयास अभी जारी हैं।...

(नन्दिनी एक परिवर्तित नाम है। सहमति न होने के चलते शिक्षिका और स्कूल का नाम शामिल नहीं किया गया है।)

और अब मेरे बचपन के अनुभव से कुछ बातें जो मुझे अभी तक याद हैं और जिन्होंने शायद मुझपर बहुत असर डाला। इसे मैं कुछ समेकित करके लिख रही हूँ। आप देखेंगे कि इसका बड़ा हिस्सा नन्दिनी के बचपन के अनुभव जैसा ही है, किन्तु यह एक दूसरी दृष्टि यानी बच्ची की दृष्टि से है।

बचपन में सीखने का उत्साह और स्कूल में उसकी जगह

मेरा बचपन उल्लासों और कौतूहल से भरा हुआ एक ऐसा अनुभव रहा है जिसमें सवालों का जाल और विचारों का अथाह समन्दर था। लेकिन बच्चों को सवाल पूछने नहीं चाहिए, चुपचाप बड़ों की बातों का आदर करना चाहिए, ऐसी मान्यताएँ जितनी गहरी उस समय के समाज में थीं उतनी ही गहरी आज के समाज में भी मुझे दिखाई देती हैं। छोटे बच्चों का बड़ों से सवाल पूछना सही नहीं माना जाता है, यह बात उस समय तो समझ नहीं आती थी जितनी कि आज स्पष्ट रूप से समझ में आती है। बच्चों को अपनी जागीर मानने का अधिकार बड़ों के हाथ में होता ही है, यह बात आज तमाम चर्चाओं में से बहुत ही स्पष्ट रूप से सामने आती है।

बड़े होकर स्कूल जाना है, ऐसा कहते हुए सुना था दादाजी को। लेकिन दोस्तों और बड़े भाई के माध्यम से बनी स्कूल की छवि ने हमारे मन में स्कूल को लेकर एक भय पैदा कर दिया था। स्कूल एक ऐसी जगह है जहाँ अनुशासन का होना पहली अनिवार्यता होती है, दोस्तों की ऐसी बातों को सुन-सुन कर मैंने भी अपने मन में स्कूल की छवि एक ऐसी जगह के रूप में बना ली कि जिसमें मैं जब भी जाऊँगी मार खानी ही पड़ेगी। इस छवि ने मेरे मन में स्कूल के लिए डर और उत्साह दोनों पैदा किए। डर इस बात का कि स्कूल जैसी कोई जगह है जिसमें मार पड़ती है, और उत्साह इस बात का कि बिना कोई ग़लती किए कैसे कोई किसी को मार सकता है।

स्कूल की एक और छवि मेरे मन में बनी कि स्कूल में बहुत सारे नए-नए दोस्त मिलेंगे, जिनके साथ खेल सकते हैं और ख़ूब सारी बातें की जा सकती हैं। क्योंकि दोस्त लोग स्कूल की तमाम वह बातें भी करते थे, जैसे– आज कबड्डी खेलने में क्या मज़ा आया, आज पिट्ठू में तो दूसरी टीम को हरा दिया, आज एक नए साथी ने स्कूल में नाम लिखवाया उससे दोस्ती हो गई। इस तरह की चर्चा दोस्तों के बीच सुनकर ऐसा भी लगता था कि कितना मज़ा आता होगा स्कूल में। दोस्त ख़ूब सारे गीत गाते थे, कहानियाँ सुनाते थे। अभी मन में रोज़ स्कूल जाने और इन दोस्तों के अनुभवों को स्वयं महसूस करके देखने का कौतूहल जन्म लेने लगा। मेरे मन में ये सवाल बन गए कि मैं भी स्कूल जाकर देखती हूँ, क्या सच में स्कूल ऐसी कोई जगह है जहाँ खेलने को भी मिलता है और मार भी पड़ती है। इसी कौतूहल के साथ एक दिन सुबह-सुबह मैं दोस्तों के पीछे-पीछे स्कूल में पहुँच गई।

जिस दिन मैं पहली बार स्कूल गई, चुपचाप इस क्लास से उस क्लास में घूमती रही। कभी किसी से कुछ भी नहीं बोलती इसलिए कोई शिक्षक भी कोई बात नहीं करता। लेकिन पूरे दिन जो भी प्रक्रियाएँ होतीं, उनको देखती रहती और अलग-अलग प्रक्रियाओं से अलग-अलग छवि मन में बनाने लगी। जैसे– प्रार्थना में लाइन से खड़े होंगे, गुरुजी के पैर छूने हैं, छोटे बच्चे आगे

बैठेंगे, जिनका नाम लिखा है वही बच्चे श्यामपट्ट पर कुछ लिखेंगे, गुरुजी डाँटेंगे तो उस समय चुप रहना है, क्लास में भी चुप रहना है। कुछ प्रक्रियाओं का असर मेरे व्यवहार में भी दिखाई देने लगा। इस बात का एहसास मेरे घर में मेरी माँ को सबसे पहले हुआ, और वह इस तरह से कि जो बच्ची इतना ज़्यादा बोलती थी कि बोलने के लिए उसे डाँट पड़ती थी, वह अचानक चुप कैसे हो गई? स्कूल की बहुत सारी ऐसी प्रक्रियाएँ जिनका प्रभाव बच्चे के सीखने से लेकर उसके व्यवहार में बदलाव और तर्क करने की क्षमताओं में सीधे-सीधे देखा जा सकता है, उनमें ऐसी ही एक प्रक्रिया है स्कूल की प्रार्थना सभा। उस समय स्कूल में जो प्रार्थना होती थी उसकी कुछ लाइनें मैं आप सभी के साथ साझा कर रही हूँ : 'वह शक्ति हमें दो दयानिधे कर्तव्य मार्ग पर डट जाएँ, पर-सेवा पर-उपकार में हम जगजीवन सफल बना जाएँ'।

इस प्रार्थना को रोज़-रोज़ गाते-गाते मैंने जो छवि बनाई, उसमें यह प्रमुख रहा कि कोई दयानिधि नाम का सुपरपॉवर है जो लोगों को बड़ा-छोटा, अमीर-ग़रीब बनाने में भूमिका निभाता है। वही एक अमूर्त शक्ति है जिसके प्रति सभी को 'कर्तव्य परायण' रहना है। लेकिन जो व्यक्ति किसी को दिखाई नहीं देता, जिसको कभी किसी ने देखा नहीं उसके बारे में यह कहा जाना कि वही सब कुछ है कितना सही होगा। पर यह दूसरा सवाल करने का साहस नहीं था और वह सवाल मन में ही रहा, यह सवाल आज भी बना हुआ है। ऐसी ही स्कूल में तमाम प्रक्रियाएँ थीं जो मुझे परेशान भी करती थीं और सोचने के लिए तैयार भी करती थीं।

प्रार्थना सभा का एक पक्ष था ऊपर लिखी हुई अमूर्त शक्ति के प्रति सवाल। लेकिन इसकी दूसरी प्रक्रियाएँ और भी गहरे सवालों की तरफ़ मुझे ले जाने लगीं, जैसे– नियमित कुछ ख़ास बच्चों के द्वारा की जाने की प्रक्रिया से जो बदलाव मुझमें दिखने लगे वह और भी चौंकाने वाले थे। जैसे– इस प्रक्रिया से जो कुण्ठा मन में उत्पन्न हुई, वह थी कि प्रार्थना वो बच्चे करवाएँगे जिनकी सुरीली आवाज़ हो, साफ़ सुथरे कपड़े पहने हों, शिक्षक उन्हें प्यार करते हों, पढ़ने में बहुत तेज़ हों, कक्षा में सबसे पहले बोलेंगे, आगे बैठेंगे, आदि आदि। इस कुण्ठा ने मुझे देर से स्कूल जाने के लिए तैयार किया। अब मैं घर से चली जाती और खेत की मेड़ पर बैठी रहती इस बात के इन्तज़ार में कि जब प्रार्थना समाप्त होगी तब जाएँगे। हमसे कौन पूछेगा? शिक्षक तो हमारे जैसे लोगों से बात भी नहीं करेंगे। मेरे मन में क्लास में भी शिक्षकों के प्रति नकारात्मक नज़रिए का विकास होने लगा, जिसके चलते मैं शिक्षकों के द्वारा कही बातों को नज़रअन्दाज़ करने लगी। यह बात थी मेरी।

आपसी बातचीत सीखने में मददगार

बच्चों की भाषा का सम्बन्ध उन अनुभवों से है जिन्हें वे अपने हाथों और शरीर से ख़ुद करते हैं। यह सम्बन्ध उन वस्तुओं से भी है जिनके सम्पर्क में वे आते हैं। बच्चे जिन चीज़ों के सम्पर्क में आते हैं उनसे और घनिष्ठ सम्बन्ध बनाने के लिए वे शब्दों की मदद लेते हैं। बड़ों

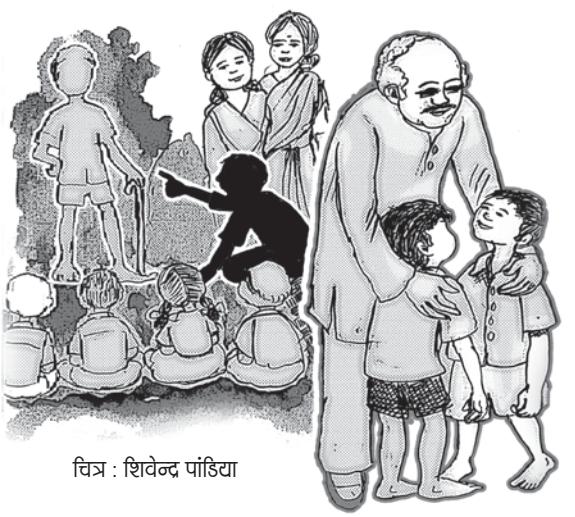

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

की तरह बच्चे भी अकसर भाषा का प्रयोग बीते हुए को याद करने के लिए करते हैं, जैसे– कोई घटना, व्यक्ति या कोई चीज़ जो बच्चों के आसपास है उसे बच्चे अपनी चर्चा में शामिल करते हैं। इस समय अगर कक्षा में बच्चों द्वारा शामिल की गई बात को स्थान नहीं मिलता, तो बच्चे को लगता है कि उसकी बात का कक्षा में कोई प्रयोजन नहीं है। इस प्रक्रिया में कई बार बच्चे ये भी मानने लगते हैं कि उन्होंने जो कहा वो शायद ग़लत था इसीलिए उसे शामिल नहीं किया गया। इस प्रक्रिया में कई बार शिक्षक ये भी बोलने की ग़लती कर बैठते हैं कि तुम चुप रहो, कम बोलो।

बच्चे अकसर चीज़ों और अनुभवों को इसीलिए कक्षा में प्रस्तुत करते हैं कि उनके द्वारा कही गई बात को स्वीकार किया जाए (शायद किसी भावनात्मक स्तर पर)। बच्चे कई बार अपने डर, अपनी योजनाएँ, अपेक्षाएँ और किसी अजीब परिस्थिति में क्या हो रहा होगा, इसपर अपने विचार प्रकट करते हैं। स्कूल हो या घर, दोनों में ही बच्चों का बात करना प्रायः ग़लत समझा जाता है। ये माना जाता है कि यदि कोई बच्चा बात कर रहा होगा तो वो ठीक से पढ़ाई नहीं कर रहा होगा। इसीलिए जैसे ही शिक्षक बच्चों को बात करते हुए देखते हैं उन्हें तुरन्त रोकते हैं। आपस में बात करने का मौक़ा बच्चों को सिर्फ़ भोजन अवकाश जैसे अवसरों के दौरान ही मिलता है। बातचीत के प्रति उपेक्षा की वजह से हम शिक्षा में बातचीत के माध्यम से एक दूसरे के अनुभवों से सीखने के अवसरों को कम करते जा रहे हैं। अगर कक्षा में हर बच्चा यह महसूस करे कि वह जो कहेगा उसे सुना जाएगा एवं सभी बच्चे यह महसूस करें कि शिक्षक को उनका बातचीत करना और बोलना अच्छा लगता है, तो फिर कक्षा का माहौल उन तमाम सम्भावनाओं से भर जाएगा जो सभी बच्चों के सीखने में सहयोग कर रहा होगा।

निष्कर्ष

लेख के अन्त में, मैं अपने अभी तक के अनुभव के आधार पर यही कहना चाहूँगी कि शिक्षक को किताबों की दुनिया और आम जीवन की दुनिया के बीच के सम्बन्ध को कक्षा में बहुत ही योजनाबद्ध तरीक़े से लेकर आना चाहिए। बच्चे के बचपन की जिज्ञासा और उठ रहे कौतूहल एवं सवालों को कक्षा में रखने के लिए पर्याप्त और सकारात्मक माहौल बनाया जाए। टेक्स्ट बुक की सीमाएँ एवं बच्चों के अनुभवों के कक्षा में जगह के महत्त्व के सम्बन्ध की समझ एक शिक्षक के रूप में होना कक्षा की पहली आवश्यकता है। यह समझ अगर एक शिक्षक के पास नहीं होगी तो वह न तो अपनी क्लास में सही तरीक़े से काम कर पाएगा और न ही बच्चों के साथ न्याय कर पाएगा। बच्चों के पढ़ने–लिखने को समग्रता में समझने की ज़रूरत है। इसके लिए कक्षा में बच्चों के साथ नियमित बातचीत हो, बच्चों को अपने अनुभवों को साझा करने का मौक़ा मिले, बच्चों को अपने आसपास के परिवेश के बारे में सोचने का अवसर मिले, बच्चों के बीच पढ़ने का माहौल बनाने के लिए उन्हें पाठ्यपुस्तक के अलावा अन्य बाल पुस्तकें एवं कहानियाँ आदि पढ़ने के पर्याप्त अवसर और सामग्री उपलब्ध हो। बच्चों द्वारा पढ़ी गई कहानियाँ, बाल साहित्य आदि के सम्बन्ध में अनुभवों पर चर्चा होनी चाहिए और बच्चों को अपने अनुभवों को लिखने का अवसर भी मिलना चाहिए।

कमला बाजपेई का शिक्षा में 20 वर्षों से ज़्यादा का अनुभव रहा है। वे शाला और समुदाय के बेहतर रिश्तों और जेण्डर के मुद्दे पर 'लोकमित्र' रायबरेली, उत्तर प्रदेश के साथ लम्बे समय तक जुड़ी रही हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन रायपुर, छत्तीसगढ़ में कार्य कर रही हैं। यहाँ प्राथमिक स्कूल के शिक्षकों के साथ जुड़ाव बनाते हुए बच्चों में प्रारम्भिक गणित व पढ़ने–लिखने के कौशलों को विकसित करने में भूमिका निभाती हैं।

सम्पर्क : kamla.bajpai@azimpremjifoundation.org